P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-2) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का परिवर्तित स्वरुप एवं उभरती नवीन प्रवृत्तियां

राजेश कुमार टोंक
शोधार्थी,
राजनीतिक विज्ञान विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर, राजस्थान, भारत

सारांश

समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था द्वितीय विश्व–युध्दोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के सामूहिक प्रयासों का सम्मिलित नतीजा है। जिसके तहत युद्ध उपरान्त उत्पन्न समस्याओं के निराकरण हेतु एक शांत एवं स्थिर विश्व–व्यवस्था के निर्माण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं मुद्रा मामलों के नियमन हेतु अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की स्थापना की गयी। जिसका निर्माण ब्रेटन–वुड्स समझौते के द्वारा किया गया था । 80 के दशक में ब्रेटन–वुड्स व्यवस्था के पतन के पश्चात् नवीन अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के निर्माण एवं समतामूलक–न्यायाधारित आर्थिक व्यवस्था के निर्माण की मांग अन्तर्राष्ट्रीय विषयों का महत्वपूर्ण कारक बनता जा रहा है । जिसके लिए वैश्विक अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संरचनाओं में समकालीन वास्तविकताओं के अनुरूप सुधार किया जाना अवश्यम्भावी हो गया है ।

मुख्य शब्द : अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का परिवर्तित स्वरुi

प्रस्तावना

विगत दो दशकों से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में मौद्रिक एवं व्यापार व्यवस्थाओं के प्रबंधन हेतु प्रतिबद्ध अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं विशेषकर विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन इत्यादि के संबंध में सुधार एवं पुनःसंरचना हेतु विकासशील राष्ट्रों द्वारा निरन्तर मांग की जा रही है तथा यह विषय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक संबंधों में उत्तर–दक्षिण वार्ता का एक महत्वपूर्ण निर्धारक/कारक बनता जा रहा है।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान यह निरन्तर स्पष्ट होता जा रहा था कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा मामलों के साथ – साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व वाणिज्यिक मामलों का नियमन भी युद्धोत्तर काल में होगा। अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के निर्माण के लिए दो प्रमुख कारकों ने योगदान दिया। पहला, विकसित देशों के बीच इस बात को लेकर एक सामान्य सर्वसहमति थी कि 1930 के दशक की त्रुटियों को दोहराया नहीं जाएगा। दूसरे, युद्ध की समाप्ति पर अमेरिका के मन में एक सामान्य भय बना हुआ था कि जिस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध के बाद स्थिति थी वैसे ही अमेरिकी अर्थव्यवस्था को कहीं मंदी (Recession) का सामना न करना पड़े। इसलिए इस बात पर सहमति व्यक्त की गई कि इन दो संभावित समस्याओं का सामना मुक्त व्यापार के सिद्धान्त के प्रति एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धता से ही किया जा सकता हैं। जिसमें पारस्परिक प्रशुल्क गारंटी व उसमें कमी भी सम्मिलित होंगे और इसका संचालन एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक व्यवस्था करेगी अथवा कम से कम व्यापारिक नीति पर एक बहुपक्षीय समझौता किया जाएगा।

साहित्यावलोकन

तपन बिस्वाल अपनी पुस्तक ''अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में लिखते हैं कि शीतयुद्ध काल में निर्मित ब्रेटनवुड्स संस्थाएँ पिछले 60 वर्षो से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में बेहद सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। इन संस्थाओं का वास्तविक लक्ष्य वैश्विक आर्थिक एवं सामाजिक विकास को बनाए रखना है।

बेरनार्ड हॉकमैन अपने ''पॉलिसी रिसर्च वर्किंग पेपर : प्रोपोजल्स फॉर डब्ल्यू टी ओ रिफॉर्म'' में लिखते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक एवं वाणिज्य व्यवस्था का संचालन करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग अत्यावश्यक है।

Tokseks Dokes सुन्दरम ने अपनी पुस्तक ''रिफ़ार्मिंग द इंटरनेशनल फाइनेंसियल सिस्टम फोर डिवलपमेंट'' में ब्रेटनवुड व्यवस्था के निर्माण एवं उसके

" में ब्रेटनवुड व्यवस्था के निर्माण एवं उसके डिजाईन की व्याख्या प्रस्तुत की है साथ ही पुस्तक के अंतर्गत लेखक ने व्यवस्थित डॉलर के वर्चस्व वाली प्रणाली का आलोचनात्मक

मूल्यांकन करने के साथ-साथ इसके परिणामस्वरूप ब्रेटनवुड व्यवस्था के पतन का भी उल्लेख किया है |

डेनियल. के. टारूल्लो (Denial. K. Tarullo) Georgtown University Law Center, ने वर्ष 2007 में अमेरीकी सीनेट की ''सुरक्षा एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त पर समिति'' में अपने एक परिपत्र ''रिफोर्मिंग की इन्टरनेशनल फाइनेंशीयल इन्स्टीट्यूशन फॉर द 21St सेन्चुअरी'' में कहा है कि निश्चित रूप में ये संस्थाएं अब पुरानी पड़ चुकी हैं। वर्तमान समय की आवश्यकताओं के अनुरूप इन वित्तीय संस्थओं में संस्थागत सुधार यथा – कार्यात्मक एवं संरचनात्मक सुधार अपरिहार्य हैं। साथ ही डेनियल ने विश्व बैंक एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में सुधारों हेतु एक विस्तृत एजेंडा भी प्रस्तुत किया।

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संरचना का उदय

विश्व अर्थव्यवस्था के स्वरुप का निर्धारण ब्रेटन–वुड्स और डम्बार्टन ओक्स में किया गया। विश्व व्यवस्था दो स्तम्भों पर आधारित थी। परमाणु अस्त्र और नई मुद्रा प्रणाली। इसको निर्णय–निर्माण के अत्यंत केंद्रीकृत प्राधिकरण का गठन करके मजबूत किया गया जिसमे अमेरिकी राष्ट्रपति के पास अभूतपूर्व शक्तियां थी। सत्ता और शक्ति के मामले में अमेरिकी राष्ट्रपति इतिहास के किसी भी सम्राट की तुलना में अत्यंत शक्तिशाली भूमिका में था।[1] ब्रेटन वुडस संस्थाओं (विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष) के माध्यम से एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था की कल्पना की गई जो स्वतंत्र व्यापार, भेदभावरहित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार–व्यवस्था को प्रोत्साहन देने तथा अभावयुक्त आर्थिक व्यवस्था को समाप्त करने के लक्ष्य को प्राप्त कर सके, परन्तु ब्रेटन बुवडस की इन संस्थाओं पर पष्चिमी देशों के लोग ही कार्य करते आ रहे हैं। उनके द्वारा ही नियमों का निर्माण एवं संचालन होता आ रहा है एवं उनकी मर्जी से ही आर्थिक नीतियाँ तय होती हैं। अतः विकासषील देशों ने यह महसूस किया कि इन संस्थाओं का राजनीतिकरण कर दिया गया है जिसके फलस्वरूप संकुचित राजनीतिक, सामरिक व सुरक्षा के आधारों पर आर्थिक सहायता सम्बन्धी फैसले होते हैं। 1970 के दशक के प्रारम्भ में उत्तर के धनी एवं औद्योगिक देश तथा दक्षिण के निर्धन व विकासशील देशों के बीच तनाव व टकराव का दौर जारी रहा। उत्तर के धनी देश अपने आर्थिक व व्यापारिक हितों के रक्षार्थ आर्थिक व्यवस्था में कोई सुधार नहीं चाहते थे जबकि दक्षिण के निर्धन देशों के राजनेताओं ने आर्थिक पोषण एवं सामाजिक असमानता के खिलाफ अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन करने का आहवान किया। तीसरी दुनिया के विभिन्न देशों द्वारा आर्थिक पोषण के खिलाफ सुर उठते रहे। असंलग्न आन्दोलन के छठे क्यूबा शिखर–सम्मेलन (1979) में फिदेल कास्त्रो ने ''आर्थिक साम्राज्यवाद''को जड से नष्ट करने की आवश्यकता पर बल दिया। इसके लिए असंलग्न राष्ट्रों के लिए एक सुनिश्चित समन्वयकारी नीति को विकसित करने पर बल दिया गया एवं नवीन व्यूहरचनाओं के निर्माण की जोरदार अपील की गई।[2]

युद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक एवं व्यापारिक व्यवस्थाओं के प्रबंधन हेतु ब्रेटनवुड्स व्यवस्था की स्थापना की गई। ब्रेटनवुड्स व्यवस्था विश्व इतिहास में पूर्णरूपेण समझौते पर आधारित मुद्रा व्यवस्था का पहला उदाहरण थी जिसका उद्देष्य आत्मनिर्भर राष्ट्र–राज्यों के बीच मुद्रा संबंधों का संचालन करना था। द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रकोप के चलते वैश्विक पूँजीवाद के पुनःनिर्माण की तैयारी के साथ सभी 44 मित्र राष्ट्रों के 730 प्रतिनिधि ब्रेटनवुड्स के न्यू हैम्पशापर शहर में माउण्ट वाशिंगटन होटल में इकठ्ठा हुए। प्रतिनिधियों ने विचार विमर्श किए और जुलाई 1944 के प्रथम् तीन सप्ताह के दौरान अन्ततः ब्रेटनवुड्स समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए। इस सम्मेलन को बुलाये जाने का मुख्य उददेश्य द्वितीय विश्व युद्ध के कारण देशों की आर्थिक व्यवस्था पर पड़े गहरे नकारात्मक प्रभावों का निराकरण करना था तथा इसके सदस्य देशों को पुनः विकास के मार्ग पर स्थापित करना था। विकास की सर्वप्रथम मांग थी आर्थिक व्यवस्था व मुद्रा विनिमय में स्थिरता लाना। देश सोने को मुद्रा मानक के रूप में प्रयोग कर रहे थें अर्थात सोने का एक निष्चित प्रतिशत स्थाई मुद्रा का काम करता था परन्तु क्योकि सभी देश अपनी आर्थिक स्थिति को उबारने के पक्ष में थें इस कारण सोने को एक ऐसी मुद्रा से बदलने के पक्ष में थे जो तत्कालीन समय में सबसे सशक्त एवं स्थिर हो और क्योकि अमेरिका को द्वितीय विश्व युद्ध में सबसे कम हानि उठानी पडी थी इसीलिए तत्कालीन समय में अमेरिकी अर्थव्यवस्था एवं उसकी मुद्रा डॉलर सबसे मजबूत एवं स्थिर स्थिति में थी। दूसरी और विश्व के सभी देश तत्कालीन परिस्थिति में एक ऐसे सुदृढ देश की परिकल्पना कर रहे थे जो ऐसी स्थिति में उनका मार्गदर्षन कर सके। इतनी मजबूत स्थिति में खडे अमेरिका की स्थिर अर्थव्यवस्था को देखते हुये ब्रेटनवुड सम्मेलन में आये हुये सभी देशों ने डॉलर को विश्व मुद्रा का मानक बनाने पर सहमति जताई इस प्रकार डॉलर विश्व मुद्रा के रूप में अस्तित्व में आया और अधिक मजबूत होने लगा। सभी देशों की सहमति के बदले अमेरिका ने कुछ समझौतो पर हस्ताक्षर किये जिन्हें इतिहास में ब्रेटनवुड समझौतो के नाम से जाना जाता है।[3] अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था के नियमन के लिए नियमों, संस्थाओं व प्रक्रियायों की व्यवस्था का निर्धारण करने के साथ–साथ ब्रेटन–वुड्स के योजनाकारों ने अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (IBRD) तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) की स्थापना की।[4] इस समझौते पर पर्याप्त संख्या में देशों के अनुमोदन के पश्चात् 1946 में ये संगठन सक्रिय हुए। विश्व बैंक (WB) के नाम से बहुधा जाना जाने वाला पुनःनिर्माण एवं विकास का अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (IBRD) एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन हैं जिसका उद्देश्य द्वितीय विश्वयुद्ध से ध्वस्त राष्ट्रों के पुनःनिर्माण में आर्थिक सहायता प्रदान करना था। बाद में इसके उद्देष्यों का विस्तार होता गया। अल्प विकसित देशों में गरीबी से लड़ने के लिए परियोजनाओं में सहायता देना भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया। इसकी गतिविधियों का संचालन सदस्य राज्यों के अंशदान से होता है। 22 जुलाई, 1944 को ब्रेटनवुड्स सम्मेलन में तैयार समझौतों पर अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति के पश्चात् 17 दिसम्बर, 1945 को यह अस्तित्व में आया। 22 जुलाई, 1944 को

ब्रेटनवुड्स में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के निर्माण को लेकर समझौता भी प्रकाश में आया। ब्रेटनवुड्स सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के प्रधान निर्माता थे फेबियन सोसायटी के सदस्य जॉन मेयनार्ड कीन्स तथा संयुक्त राष्ट्र राजकोष के सहायक सचिव हैरी डैक्सटर व्हाईट। समझौते के अनुच्छेद 27 दिसम्बर, 1945 को लागू हुए। संगठन मई, 1946 में द्वितीय विश्व युद्ध पश्चात् पुनः निर्माण योजना के तहत अस्तित्व में आया और 1 मई, 1947 को इसने अपनी गतिविधियाँ आरम्भ कर दी। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) एवं विश्व बैंक की राह पर चलते हुए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन (ITO) की स्थापना के लिए भी कदम उठाए गए। जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन (ITO) को मूर्त रूप नहीं दिया जा सका तो 1947 में बहुपक्षीय व्यापारिक समझौतों में प्रवेश के लिए एक माध्यम के रूप में विभिन्न पश्चिमी देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापारिक समझौते का सहारा लिया गया। इसमें सम्मिलित अनेक देशों ने इसके अनुच्छेदों एवं सदस्यता का विस्तार करके प्रशुल्क और व्यापार संबंधी सामान्य समझौते (GATT) के रूप में इसका विकास किया।

बहुराष्ट्रीय व्यापार समझौतों के आठ चक्रों के बाद उरूग्वे चक्र के अंतिम दौर में अनेक समझौते सामने आए। जिसके परिणामस्वरूप विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना हुई। विश्व व्यापार संगठन (WTO) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संचालन की सीमाएँ निर्धारित करता हैं।

ब्रेटनवुड सम्मेलन में नवीन वित्तीय प्रणाली का डिजाइन

ब्रेटनवुड के रचनाकार 1930 के दशक में मुद्रा की प्लॉटिंग दरों के साथ हुए विनाषकारी अनुभवों से परिचित थे। इसलिए उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि प्रमुख मौद्रिक उतार चढ़ाव व्यापार के मुक्त प्रवाह को रोक सकते हैं। इसलिए मुक्त व्यापार मुद्राओं की मुक्त परिवर्तनीयता पर निर्भर होना चाहिए। 1936 में जब कीन्स ने अपनी पुस्तक "जनरल थ्योरी ऑफ़ एम्प्लॉयमेंट, इंटरेस्ट एंड मनी" में विश्व व्यापार के टूटने एवं 1950 के दशक में विनिमय नियंत्रण के प्रसार के मद्देनजर शेष विश्व को वित्तीय रूप से कमजोर करने की स्थिति में अर्थव्यवस्था के लिए एक मॉडल दिया जिसने ब्रेटन–वुड्स के रचनाकारों के लिए मार्गदर्शन का कार्य किया।[5] नई आर्थिक प्रणाली को निवेश, व्यापार और भुगतान के लिए एक स्वीकृत मैकेनिज्म की आवश्यकता थी। राष्ट्रीय आवश्यकताओं के विपरीत अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में एक केंद्रीय सरकार का अभाव होता है जो मुद्रा जारी कर सकती है तथा इसके उपयोग का प्रबंधन कर सकती है। अतीत में, यह समस्या सोने के मानक के माध्यम से हल हो गई थी किंतु ब्रेटनवुड के वास्तुकारों ने इस विकल्प को बाद की राजनीतिक अर्थव्यवस्था के लिए संभव नहीं माना। इसके बजाए उन्होनें एक आरक्षित मुद्रा के रूप में अमेरिकी डॉलर (जो केंद्रीय बैंकों के लिए एक सोने की मानक मुद्रा थी) का उपयोग करके नवनिर्मित अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों की एक श्रृंखला द्वारा प्रतिबंधित निष्चित विनिमय दरों की एक प्रणाली स्थापित की।

ब्रेटन–वुड्स के रचनाकारों ने सार्वजनिक अधिकारियों को अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक असंतुलन के प्रबंधन में अधिक जागरूक एवं सक्रिय भूमिका देने की मांग की। अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्ण–मानक को पारस्परिक आर्थिक उदारवादियों द्वारा आदर्शित किया गया था क्योंकि इसने स्वतःअन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था को स्वतः सुधरने का वादा किया था। सैध्दांतिक रूप से,स्वर्ण मानक के तहत अन्तर्राष्ट्रीय असंतुलन को सरकारों के विवेकाधीन व्यवहार के बजाय बाज़ार की ताकतों द्वारा तुरंत एवं कुशलता से दूर किया गया था। सभी देशों को डॉलर के लिए अपनी मुद्राओं के मूल्य को सही करने की आवश्यकता होती है जो बदले में सोने में परिवर्तनीय थाद्य ब्रेटन–वुड्स सम्मलेन ने सोने के मानक को फिर से स्थापित करने या अधिक सटीक बनाने के लिए "स्वर्ण–विनिमय मानक" या "डॉलर–स्वर्ण मानक" का विकल्प प्रस्तुत किया था। लेकिन समझौते की कई अन्य विशेषताओं ने यह स्पष्ट कर दिया कि यह एक अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था थी जिसमें सार्वजनिक अधिकारियों ने बहुत अधिक केंद्रीय भूमिका निभाई थी।[6]

जॉन मेनार्ड कीन्स के आरक्षित मुद्रा के सुझाव के विपरीत अमेरिका ने डॉलर में विश्वास बढाने के लिए डॉलर को 35 डॉलर प्रति ओंस की दर से सोने से जोडने के लिए अपनी सहमति व्यक्त की। इस दर पर विदेशी सरकारें और केंद्रीय बैंक सोने के लिए डॉलर का विनिमय कर सकते थे ब्रेटनवुड ने डॉलर के आधार पर भुगतान की एक प्रणाली स्थापित की जिसमे डॉलर के सन्दर्भ में सभी मुद्राओं को परिभाषित किया। अमेरिकी मुद्रा डॉलर अब प्रभावी रूप से विश्व मुद्रा बन गई थी जो अंन्तर्राष्ट्रीय लेन देन मे सर्वाधिक प्रयोग की जाने लगी। अमेरिकी डॉलर सबसे अधिक क्रय षक्ति वाली मुद्रा थी और यह एक मात्र ऐसी मुद्रा थी जो सोने द्वारा समर्थित थी। इसके अतिरिक्त सभी यूरोपीय राष्ट्र, जो द्वितीय विश्व युद्ध में सम्मिलित थे वे अत्यधिक कर्ज में थे ने बडी मात्रा मे सोने को अमेरिका में स्थानान्तरित कर दिया था। इस प्रकार अमेरिकी डॉलर दुनिया को बाकी हिस्सों में अच्छी सराहना मिली और इसलिए डॉलर ब्रेटनवुड प्रणाली की प्रमुख मुद्रा बन गया।[7]

विश्व अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन

1960 और 1970 के दशक में महत्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तनों ने अंततः अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रबंधन को ध्वस्त कर दिया। जिसमें एक प्रमुख परिवर्तन आर्थिक प्रणाली में मौद्रिक निर्भरता मे उच्च स्तर का विकास था। परिवर्तनीयता ने अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय लेन देन के विस्तार की सुविधा प्रदान की जिससे मौद्रिक अन्तनिर्भरता विकसित हो गई। इसी दौर में अंतर्राष्ट्रीय बैंकिग संघ का उद्भव बैंकिग के अंतर्राष्ट्रीयकरण के एक अन्य पहलू के रूप में उभरा। मौद्रिक अन्योन्याश्रय के इन नए रूपों ने विषाल पूंजी प्रभाव को संभव बनाया। ब्रेटनवुड युग के दौरान देश संरचनात्मक असमानता के मामलों में भी औपचारिक रूप से विनिमय दरों में परिवर्तन करने से भयभीत थे क्योंकि इस तरह के परिवर्तनों का कुछ घरेलू आर्थिक समूहों पर सीधा प्रभाव पडता था जिसको स्थानीय नेतृत्व द्वारा एक राजनीतिक जोखिम के रूप में देखा गया परिणामस्वरूप आधिकारिक विनिमय दरें अक्सर बाजार के संदर्भ मे अवास्तविक बन जाती हैं जो सट्टेबाजों के लिए

लगभग जोखिम रहित प्रलोभन प्रदान करती हैं। वे एक कमजोर से मजबूत मुद्रा की ओर बढ सकते हैं जब पुर्नमूल्यांकन होने पर मुनाफे की उम्मीद हो। हालाँकि मौद्रिक प्राधिकारण पुर्नमूल्यांकन से बचने मे कामयाब रहे तो वो बिना किसी हानि के अन्य मुद्रा में लौट सकते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रबंधन का विघटन

1968 तक 35 डॉलर/ओंस के एक निश्चित संबंध पर डॉलर का बचाव करने की अमेरीकी नीति तेजी से अस्थिर हो गई थी। अमेरिका से सोने के बहिर्वाह में तेजी आई और जर्मनी और अन्य देशों से सोना रखने का आष्वासन मिलने के बावजूद अमेरिका के असंतुलित राजकोषिय खर्च ने 1940 और 1950 के दशक की कमी को 1960 के दशक में डॉलर की कमी में बदल दिया। 1967 में आईएमएफ ने रियो डी जेनेरियो में वर्ष 1946 में स्थापित ट्रेंच डिविजन को बदलने की सहमति दे दी। विषेष आहरण अधिकार एक अमेरिकी डॉलर के बराबर निर्धारित किए गए थे जो बैंको और आईएमएफ के अतिरिक्त अन्य लेन देन के लिए उपयोग करने योग्य नहीं थे।

डोले, फोल्केर्टस–लैंडो और गार्बर ने आज की मौद्रिक प्रणाली को ब्रेटनवुड II के रूप में संदर्भित किया है उनका तर्क है कि 2000 के दशक शुरूआत में अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली एक प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा और एक परिधि जारी करने वाले कोर से बनी है। परिधि एक निर्यातित विनिमय दर के रख रखाव के आधार पर निर्यात के नेतृत्व वाली वृद्धि के लिए प्रतिबद्ध है। 1960 के दशक में कोर अमेरिका था और परिधि यूरोप और जापान थे। जबकि वर्तमान में नई परिधि एशिया की है जबकि कोर वही अमेरिका है।

2008 वैश्विक वित्तीय संकट के मद्देनजर कुछ नीति निर्धारकों और अन्य ने एक नई अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली का आहवान किया है। जबकि 2008 में फ्रांसीसी राष्ट्रपति निकोलस सरकोजी ने कहा था कि ''हमें ब्रेटनवुडस की तरह ही वित्तीय प्रणाली में आई दरार पर पुर्नविचार करना चाहिए।''[28] 2009 में पिटसबर्ग में जी–20 की सम्मेलन में मुद्रा विनियम दरों का एक प्रस्ताव प्रस्तावित किया गया था जिसे पिटसबर्ग समझौते के नाम से जाना जाता है जिसके तहत घाटे वाले देशों को अपनी मुद्राओं का अवमूल्यन करना पड सकता है और अधिशेष राष्ट्रों को उनकी मुद्राओं का अवमूल्यन करना पड सकता है। वर्ष 2010 में ग्रीस के प्रधानमंत्री पापाड्रेउ ने अंतर्राष्टीय हेराल्ड ट्रिब्यून में एक आर्टिकल में लिखा कि दुनिया भर में डेमोक्रेटिक सरकारों को ब्रेटनवुड्स के रूप में अपने तरीके से बोल्ड रूप में एक नई वैश्विक वित्तीय वास्तुकला स्थापित करनी चाहिए जिसकी हमें आवश्यकता है।

ब्रेटनवुड व्यवस्था का प्रभाव तथा इसे हटाये जाने के कारण

ब्रेटनवुड व्यवस्था लागू होने के बाद डॉलर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुतायत में प्रयोग होने लगा जिस कारण अमेरिका की आर्थिक स्थिति बेहद मजबूत हुयी किन्तु तुलनात्मक रूप से अन्य देशों की आर्थिक स्थिति कमजोर हो गयी थी। वर्ष 1971 तक सभी देशों ने वैश्विक स्तर पर डॉलर का अधिकाधिक प्रयोग किया। फलस्वरूप देशों का इस एक करेन्सी के रूप में डॉलर से विश्वास उठ गया। इसका प्रभाव यह हुआ कि अमेरिका में मुद्रास्फीति की दर बढने लगी। इस स्थिति में वैश्विक स्तर पर प्रयोग होने वाले डॉलर का अन्य देशों में प्रसार बढ़ने लगा क्योंकि डॉलर की कीमत वैश्विक स्तर पर कम हो रही थी। इसी मध्य फ्रांस ने अमेरिका से उसके दिये हुये डॉलर के बदले अपना सोना वापस मांगा। इतनी समस्याओं से जूझ रहे अमेरिका के पास जब कोई अन्य रास्ता नहीं बचा तो अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति रिचर्ड एस निक्सन ने 15 अगस्त, 1975 को एक आश्चर्यजनक कठोर निर्णय लेते हुये ब्रेटनवुड व्यवस्था को अस्थायी तौर पर समाप्त करने की घोषणा कर दी। इस घोषणा के पष्चात अब डॉलर के बदले सोना वापस नहीं लिया जा सकता था। अमेरिका ने इस घोषणा के पीछे तर्क दिया कि उसके पास उतनी कीमत का सोना उपलब्ध नहीं है जितनी कीमत के डॉलर व्यापार के रास्ते अन्य देशों के रिजर्व में पहुंच चुके हैं। इस अकस्मात घोषणा ने विश्व की आर्थिक अर्थव्यवस्था को एक बडा झटका दिया जिसे दुनिया भर के देशो ने " निक्सन शॉक " का नाम दिया। अब क्योंकि डॉलर के बदले सोना वापस नहीं लिया जा सकता था इसीलिये डॉलर का मूल्य स्तर शून्य के बराबर पहूंच गया था।

समकालीन अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था

1950 में विश्व व्यापार में 16 गुनी वृद्धि हुई है। वर्ष 2011 में सकल विश्व उत्पाद में 3.9 प्रतिशत के स्तर पर वास्तविक वृद्धिदर प्राप्त हुई जबकि विकसित राष्ट्रो में यह 1.6 प्रतिशत तथा विकासशील एवं उभरती अर्थव्यवस्थाओं में 6.3 प्रतिशत की वृद्धिदर दर्ज की गई।[10] व्यापार में उल्लेखनीय वृद्धि ने वैश्विक आर्थिक समृद्धि की अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी में योग दिया है। पिछले पाँच दशकों की भांति यदि विश्व व्यापार जारी लाभों का समान वितरण न होने के भय के बीच तनाव को भी स्पष्ट करता है। एक विश्व सरकार की गैर–मौजूदगी से हर राज्य को इस बात के लिए बढ़ावा मिलता है कि वह अन्य राज्यों के साथ संबंधों में सामूहिक लाभों की बजाय पर प्रकाष डालते हैं कि क्यों द्वितीय विश्व युद्ध मे मुक्त व्यापार के प्रबल समर्थक संयुक्त राज्य अमेरिका ने निरतंर नव–वाणिज्यवाद और संरक्षणवाद में रूचि दिखाई तथा 1999 में वह केले के आयात के मुद्दे पर यूरोप के साथ व्यापारिक युद्ध में उलझ गया। इस तथ्य के बावजूद कि संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व का सबसे बडा आर्थिक बाजार और विश्व के सबसे बडे निर्यातक देशों में से एक है, यह देशों की मुक्त दौड़ के भय से एक सामान्य देश दिखाई देता है।[11]

समकालीन वैश्विक व्यापार व्यवस्था को नियंत्रित करने वाले ऐसे छह आधार हैं जो आर्थिक विकास में उल्लेखनीय योगदान देते है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में व्यापारिक संरक्षण अन्तर्राष्ट्रीय समृद्धि को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। दूसरे, भविष्य उन नियमों पर प्रबल रूप से निर्भर करेगा जिनका चयन प्रमुख आर्थिक शक्तियाँ व्यापार और मुद्रा नीति के संचालन को समर्थन देने के लिए करेंगी। तीसरे, विश्व की सबसे मजबूत अर्थव्यवस्था संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थिति इस समीकरण में प्रधान

रहेगी। चौथे, विदेशी निवेश और व्यापार में शक्तिशाली और सम्पन्न बहुराष्ट्रीय कंपनियों की गतिविधियाँ तेजी से साथ आर्थिक बहाव का निर्धारण करेंगी। निरंतरशील व्यापारिक उदारीकरण के लिए प्रक्रियाएँ और दबाव निरंतर उन राज्य सरकारों के नियंत्रण से बाहर हो रहे हैं जिनकी प्रभुत्त्वसंपन्न शक्ति दुर्बल हो रही है। पांचवें, गैर–राज्य वाणिज्यिक और मुद्रा कर्त्ता जैसे कि पारराष्ट्रीय बैंक वैश्विक व्यापार के संचालन में सुगमता प्रदान करेंगे। छठा और अंतिम, वैश्वीकरण की गति तेज होने की संभावना है। इससे विश्व समुदाय के एकीकरण एवं वैश्विक पूंजीवाद को प्रोत्साहन मिलेगा।[12]

नवउदारवादियों के लिए आधुनिक समय में भी मुक्त व्यापार के सिद्धान्तों की प्रासंगिता बरकरार है। एक खुला वैश्विक बाजार, जहाँ सामान एवं सेवाओं का राष्ट्रीय सीमाओं से परे स्वतंत्र रूप से आवागमन हो सकता है, राष्ट्र राज्यों का लक्ष्य होना चाहिये, क्योकि केवल यही आर्थिक विकास को अधिकतम करेगा। उनके अनुसार बाजार सिद्धान्तो से गैर प्रतिस्पर्धी उद्योगो की रक्षा करने वाली नीतियां अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को नष्ट कर देती है। सुषान स्ट्रेन्ज ने अपनी पुस्तक ''द रिट्रीट ऑफ दे स्टेट'' में तर्क दिया है कि राज्य की शक्ति और अधिकार धीरे धीरे वैश्विक बाजारो तथा उनके मुख्य प्रतिनिधियों एवं अन्तर्राष्ट्रीय निगमो की ओर प्रभावित हो रहे है। स्ट्रेज के अनुसार राज्य का अधिकार कम हो रहा है, तथा प्राधिकार की वास्तविक अवस्थिति राज्य की सीमाओं के बाहर चली गयी है।[13]

इन सभी अनुमानों के अनुसार, वैश्विक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के उदारीकरण की प्रक्रिया जारी रहेगी। वैसे यदि नव–वाणिज्यवाद की शक्तियाँ भी तेजी दिखाएंगी तो प्रगति भी समस्याप्रद रहेगी। इसके द्वारा वर्चस्वपूर्ण स्थायित्व के पूर्वानुमान के अनुसार उदारवादी व्यापारिक व्यवस्था व्यवस्था के बंद होने से अमेरिकी नेतृत्व का भी पतन हो जाएगा। उदारवादी व्यापारिक व्यवस्था विश्व व्यापार संगठन जैसी वैश्विक संस्थाओं और मुक्त 1 व्यापार समझौतों जैसी उदारवादी प्रादेशिक व्यवस्थाओं के समर्थन से ही बनी रह सकेगी। अनेक राज्य वाणिज्यवाद को नकारने और सर्वाधिक अनुग्रहीत राष्ट्र की बजाए अब सामान्य व्यापार संबंधों को स्वीकारने मे अपना लाभ देखते हैं। इसके अनुसार, पारस्परिकता नियम सहित एक राज्य को प्रदान की जाने वाली प्रशुल्क वरीयता उसी उत्पाद का निर्यात करने वाले अन्य सभी राज्यों को भी प्रदान की जाएगी। गेर–भेदभाव नियम तथ अन्य देश मे कटौती के बदले में देश अपने–अपने प्रशुल्कों में भी कमी करेंगे तथा घरेलू तौर पर और विदेशों मे निर्मित वस्तुओं के साथ समान व्यवहार किया जाएगा। मुक्त व्यापार के लाभों के समर्थन में जुलाई 1999 मे विश्व व्यापार संगठन क निदेशक माईक मूरे का कहना था कि मुक्त व्यापार का संबंध जीवन स्तर मे उन्नति से है। इसका संबंध लोगों के बेहतर जीवन से हैं। मुक्त व्यापार तभी लाभकारी है जब इसका फायदा उत्तर और दक्षिण के देशों को साथ–साथ मिले।

ब्रेटनवुड्स संस्थाओं की उत्पत्ति के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में निरन्तर अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं। अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति संरचना में अनेक राष्ट्र आर्थिक एवं तकनीकी दृष्टि से शक्ति संपन्न उभरे है तो दूसरी ओर विश्व के विकसित एवं औद्योगिक रूप से सम्पन्न राष्ट्रों की शक्ति में ह्रास हुआ है। वर्ष 2008 में अमेरिका में आये सब–प्राइम वित्तीय संकट तथा वर्ष 2010–11 में यूरोजोन में आये वित्तीय संकट ने एक तरफ जहाँ अमेरिकी तथा यूरोपियन अर्थव्यवस्थाएं आर्थिक दृष्टि से अस्त–व्यस्त एवं कमजोर हो रही थी तब उसी समय भारत एवं चीन जैसी विकासशील अर्थव्यवस्थाएं आर्थिक दृष्टि से मजबूत हो उभर रही थी। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विश्लेषकों के अनुसार शक्ति का केन्द्र पश्चिम से पूर्व की ओर खिसक रहा है अर्थात पूर्व की हवा पष्चिम की पछुवा हवा पर भारी है। अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति संतुलन में परिवर्तन तथा आर्थिक असमानता एवं वैश्विक संस्थाओं की कमजोर स्थिति ने विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को आपसी सहयोग एवं समर्थन के लिए प्रेरित किया है। परिणामस्वरूप वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में द्विपक्षीय आर्थिक सम्बन्धो एवं क्षेत्रीय सहयोग संगठनो यथा सार्क, आशियान, हिमतक्षेश, मर्कोसुर, ब्रिक्स, इब्सा आदि के माध्यम से आर्थिक विकास को गति देने के लिए विकासशील राष्ट्र आपसी सहयोग कर रहे है। विश्व बैक एवं मुद्राकोष की विकासशील विश्व के प्रति उदासीन दृष्टिकोण के चलते एक विकल्प के रूप में विकासशील राष्ट्रो द्वारा आपसी सहयोग के माध्यम से न्यू डवलपमेन्ट बैंक तथा एशियन इन्फ्रास्ट्रेक्चर बैंक की स्थापना दक्षिण दक्षिण सहयोग का एक सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है साथ ही यह प्रवृति वैश्विक वित्तीय संस्थाओं पर विकसित देशों के आधिपत्य का विरोध भी करती है। इसलिए समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में यह अपरिहार्य हो जाता है कि द्वितीय विश्व के पश्चात् की स्थिति में स्थिर अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली में परिवर्तित वैश्विक शक्ति संरचना के अनुसार समायोजन किया जाये।

अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संरचनाओं में सुधार की आवश्यकता

समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की संरचना 20वीं शताब्दी के मध्य की स्थिति के समकक्ष स्थिर है जो वर्तमान में परिवर्तित शक्ति वास्तविकताओं एवं चुनौतियों के अनुरूप नहीं है। इन संस्थाओं में पुनःसुधार एवं इनकी पुनःसंरचना का एकमात्र उद्देश्य वैश्विक शांति, समृद्धि, स्थिरता एवं विकास की निरन्तरता को सुरक्षित बनाए रखना है। अतः इनके पुनःसुधार एवं पुनःसंरचना की आवश्यकता निरन्तर महसूस की जा रही है।

उल्लेखनीय है कि 1960 के दशक से ही ब्रेटनवुड्स संस्थाओं की कार्यप्रणाली एवं संरचना को लेकर विकासशील विश्व ने इनके विरोध में आवाज उठाना प्रारम्भ कर दिया था। जब सम्मिलित रूप में नवीन अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (NIEO) की स्थापना की माँग की गई। परिणामस्वरूप वर्ष 1964 में संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) के तत्वावधान में संयुक्त राष्ट्र व्यापार एवं विकास सम्मेलन (UNCTAD) की स्थापना की गई। जिसका मुख्य उद्देश्य दक्षिण – दक्षिण सहयोग (विकासशील देशों का आपसी सहयोग) को बढ़ावा देना था ताकि विकासशील देशों की विकसित देशों पर निर्भरता

कम हो सके। अंकटाड का मानना है कि अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं (WB, IMF, WTO) विकासशील देशों की समस्याओं का समाधान कर पाने में पूर्ण रूप से संगठित नहीं हैं। 21 अप्रैल, 2012 को UNCTAD की कतर (दोहा) में 13वीं बैठक में विकासशील देशों की उन्नत भागीदारी एवं वैश्विक वित्तीय संस्थाओं में सुशासन एवं जवाबदेही पर बल दिया गया।

कई सदियों से विकसित देशों ने अपने उच्च प्रौद्योगिकी, आर्थिक संसाधनों पर एकाधिकार, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व मुद्रा नीतियों के सरंक्षणवाद के फलस्परूप अपनी आर्थिक व राजनीतिक शक्ति मे जिस तरह अभिवृद्धि की है उसका परिणाम यह रहा है कि उत्तर–दक्षिण के मध्य तनाव, टकराव तथा संघर्ष का दौर थमा नहीं है।[8]नवीन अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (NIEO) की माँग विकासशील देशों द्वारा प्रस्तुत उन प्रस्तावों का समूह था जिसमें विकासशील देशों ने व्यापार की शर्तों में सुधार, विकास सहायता में वृद्धि, विकसित देशों के प्रशुल्क दरों में कमी, अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं का पुनःनिर्धारण कर इनके प्रबन्धन में विकासशील देशों की समुचित भागीदारी सुनिश्चित करना और अन्य माध्यमों द्वारा अपने हितों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया था। यह ब्रेटनवुड्स व्यवस्था के स्थान पर तृतीय विश्व के देशो के पक्ष में एक नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की माँग थी। इसी सन्दर्भ में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1974 में अपने विशेष अधिवेशन में वर्तमान प्रचलित आर्थिक व्यवस्था का नूतन ढ़ाँचा प्रस्तुत किया। इसका संबंध व्यापार, वित्त, वस्तुओं एवं ऋण संबंधी मुद्दों से था। नवीन अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (NIEO) की औपचारिक घोषणा एवं प्रस्तावित कार्यक्रम के आधार पर जब इसके पीछे छिपे हुए मूल कारणों का पता लगाने का प्रयास किया गया तो यह तथ्य विकासशील देशों के समझ आया कि अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षणवाद के पनपने से उनके निर्यात,संसाधनों एवं मानव क्षमताओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हैं।

नवीन अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (NIEO) की माँग समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में निरन्तर बनी हुई है। जिसकी माँग विकासशील देशों के विभिन्न मंचों यथा समूह–77, समूह–24, ब्रिक्स (BRICS), इब्सा (IBSA) तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के मंच से भी विकासशील देश नवीन अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (NIEO) हेतु अपनी सम्मिलित आवाज बुलन्द कर रहे हैं। अभी हाल में ब्रिक्स (BRICS) के नेता अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक के सुधारों से संबंधित प्रस्तावों का एक पैकेज तैयार करने के लिए सहमत हो गए हैं जिसकी घोषणा ब्रिक्स के पाँचवें शिखर सम्मेलन, सान्या (चीन) में हुई।

ध्यातव्य है कि ब्रेटनवुड्स संस्थाओं की विफलता तथा उदारवाद के प्रसार से मुद्रा एवं व्यापार प्रणाली के विकृत स्वरूप ने लैटिन अमेरीकी देशों में एक नवीन अवधारणा का विकास किया। वर्तमान वित्तीय संरचना से असंतुष्ट अनेक लैटिन अमेरीकी राष्ट्रों ने मिलकर बैंकों डेलोसुर का गठन किया तथा आपसी क्षेत्रीय सहयोग को मजबूत बनाया। अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संरचना पर औद्योगिक एवं विकसित राष्ट्रों के प्रभुत्व तथा संरचना की विफलता ने अल्पविकास (Dependency) की धारणा को जन्म दिया। मूलतः इसका विकास लैटिन अमेरीकी विद्वानों डास सान्टोस, आन्द्रे गुन्दर फ्रैंक, समीर अमीन आदि ने किया। जो वर्तमान पूँजीवादी एवं मुक्त बाजार नीतियों का विरोध करते हैं। इनके अनुसार विकसित देश ''असमान विनिमय'' (Unequal Exchange) के माध्यम से विकासशील देशों का शोषण करते हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वैश्विक मौद्रिक एवं व्यापार का प्रबंधन एवं नियमन कर पाने में ब्रेटनवुड्स संस्थाएं विफल रही हैं तथा औद्योगिक एवं अमीर राष्ट्रों के हितों की संरक्षक मात्र बनकर रह गई हैं। दूसरी तरफ, वैश्विक शक्ति संरचना का ध्रुव पश्चिम से पूर्व की ओर खिसक रहा है। ये समस्त विषय एवं मुद्दे समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संरचना विशेषतः वित्तीय संस्थाओं में संरचनात्मक, कार्यात्मक एवं संस्थागत सुधारों की आवश्यकता का आभास कराते हैं।

वैश्विक शक्ति संरचना सतत् नवीन आयामों में ढल रही हैं। शीतयुद्धोत्तर युग में, शक्ति का केन्द्र बदल रहा है जो स्वयं इस बात का सूचक हैं। शीतयुद्ध के काल में रूस एक सैन्य शक्ति के रूप में उभरा। शीतयुद्ध के मध्य में जापान तथा जर्मनी बड़ी आर्थिक शक्ति के रूप में उभरे। लेकिन 1990 के पश्चात् तकनीकी एवं भू–राजनीतिक परिवर्तनों ने शक्ति को पश्चिम से पूर्व की ओर स्थानान्तरित कर दिया है। चीन, भारत, आसियान देश इत्यादि आर्थिक ताकत के रूप में उभरे हैं। इसलिए 21वीं सदी को एशिया की सदी कहा जाने लगा है। पिछले 20 वर्षों में कई बड़ी उभरती अर्थव्यवस्थाओं विशेषरूप से, ब्रिक्स (BRICS) अर्थव्यवस्थाओं में सतत् विकास के फलस्वरूप वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद में उनकी भागीदारी में बढ़ोतरी हुई है। विश्व अर्थव्यवस्था में मूल्यवर्धन उन्नत दशों से उभरती अर्थव्यवस्थाओं की तरफ गया है। 21वीं सदी के लिए एक उदार, नियम आधारित अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था स्थापित की जा सकती है यदि इस हेतु ईमानदार प्रयास किए जाएं।[14] यह कार्य माँग करता है कि इन संस्थाओं की संरचना को वर्तमान समय की प्रासंगिकताओं एवं उभरती चुनौतियों तथा शक्ति वास्तविकताओं के अनुरूप ढ़ाला जाए।

अध्ययन का उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के उदय के साथ–साथ उसके बदलते प्रतिमानों का अध्ययन करना है अध्ययन का लक्ष्य वैश्विक शक्ति संरचना में आ रहे बदलावों के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था वित्तीय व्यवस्था (बेटनवुड्स व्यवस्था) के संदर्भ में ज्ञान प्राप्त करना है। विश्व बैंक व मुद्रकोष जैसी वित्तीय संस्थाओं में संरचनात्मक, व प्रकार्यात्मक सुधारों के संदर्भ में विचार करना, नवीन अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की माँग की प्रासंगिकता को समझना तथा तृतीय विश्व व विकासशील देशों के हित में इसका निर्माण कर समतामूलक व न्याय–आधारित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक व वित्तीय व्यवस्था के गठन के संदर्भ में व्यवहारिक दृष्टिकोंण से विचार करना है।

निष्कर्ष

समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था पूर्णतयाः राष्ट्रीय हितों से प्रेरित हो मुक्त व्यापार की दिशा का अनुगमन कर रही है। मुक्त व्यापार की ऐसी परिस्थितियों ने समय – समय पर विश्व व्यापार में तनाव एवं जीवन स्तर को कमजोर भी किया है। मुक्त व्यापार एवं उदारवादी प्रवृत्तियों ने 21वीं सदी के सबसे वो आर्थिक संकट को जन्म दिया जिसे अमेरिकी सब प्राइम संकट के नाम से जानते है। जिसने सम्पूर्ण वैश्विक आर्थिक व्यवस्था की नींव हिला दी थी। विश्व अर्थव्यवस्था इस आर्थिक झटके से उभर भी नही पायी थी कि वर्ष 2011 में यूरोपीयन आर्थिक संकट ने पुनः विश्व की बडी एवं उन्नत अर्थव्यवस्थाओं को ध्वस्त कर दिया था। मुक्त व्यापार एवं वाणिज्यकवाद के फलस्वरूप उत्पन्न इन संकटो ने देशो को अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप की ओर विचार करने पर विवश कर दिया था। राष्ट्र–राज्य मुक्त व्यापार से परे कल्याणकारी राज्य की समाजवादी भूमिका पर विचार करने लगे थे। मुक्त व्यापार एवं वाणिज्यकवाद के अति उपयोग से उत्पन्न आर्थिक संकटो ने विश्व की समृद्ध एवं विशाल अर्थव्यवस्थाओं को ध्वस्त कर दिया था। लेकिन इस दौरान कुछ विकासशील राष्ट्र विश्व की महत्वपूर्ण एवं मजबूत अर्थव्यवस्था बनकर उभरें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *दत्त, वी पी, (अनुवाद नरेन्द्र तोमर), स्वंतंत्र भारत की विदेश नीति, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,2007,पृ. 7*
2. *प्रो, जैन, बी एम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी,2013,पृ. 371*
15. *इन्स्टीट्यूशन फॉर द 21 ''सेन्चुअरी'' जोर्जटाउन यूनिवर्सिटी लॉ सेंटर, 2007*
3. *एडवर्ड एस मैसन और राबर्ट ई एसर, द वर्ल्ड बैंक सिंस ब्रेटनवुड्सः द ओरिजिन्स, पॉलिसीज, ऑपरेशन्स एण्ड इम्पैक्ट ऑफ द इन्टरनेशनल बैंक फॉर रिकंस्ट्रक्शन (वाशिंगटन डी सी ब्रुकिंग्स इन्स्टिट्यूशन) 29*
4. *बिस्वाल, तपन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड हैदराबाद,पृ. 247*
5. *केनन, बी पीटर,स्वाबोदा,के एलेक्जेंडर, रिफार्मिंग द इंटरनेशनल मोनेटरी एंड फाइनेंसियल सिस्टम इंटरनेशनल, मोनेटरी फंड पब्लिकेशन सर्विसेस वाशिंगटन डी.सी,पृ. 57*
6. *सुन्दरम, ज्योमो क्वामे, रिफ़ार्मिंग द इंटरनेशनल फाइनेंसियल सिस्टम फोर डिवलपमेंट, कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस न्यूयार्क, 2011,पृ. 4–5*
7. *इकेनग्रीन, बैरी (1996), ग्लोबलाइजिंग कैपिटल, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस*
8. *प्रो,जैन,बी एम, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, 2013, पृ. 370*
9. *वही, प्रो, जैन, बी एम, पृ. 370, 371*
10. *लाईडिया, गोर्डन, स्पेशल रिपोर्ट, 2011 वर्ल्ड इकोनोमी इन रिव्यू*
11. *बिस्वाल, तपन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड हैदराबाद, पृ. 284–285*
12. *वही, बिस्वाल, तपन, पृ. 285*
13. *बसु, रूकमी, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, अवधारणायें, सिद्धान्त तथा मुद्दे, शेज पब्लिशिंग पृ. 189*
14. *टारूल्लो–डेनियल– के, जाजटउन यूनिवर्सिटी लॉ सेंटर रिफोर्मिंग की इन्टरनेशनल फाइनेंशीयल*